[यह कॉपी सिर्फ निजी उपयोग के लिए है, इसे दूसरों से साझा न करें]

सार संक्षिप्त
दिल्ली की शहरी खेती

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–1

यमुना के कछार और खेती

पल्ला गांव से दिल्ली को यमुना का साथ मिलता है। यमुना के तट से थोड़ी दूर पर एक पुस्ता बना हुआ है। यह पुस्ता ऊंचा है और वाहनों की आवाजाही के लिए इसका पक्कीकरण कर दिया गया है । इसलिए इसे पुस्ता रोड के नाम से भी जाना जाता है । पल्ला गांव से लेकर बुराड़ी तक देहात का इलाका है और पुस्ता के दोनों तरफ खेती–किसानी होती है । पल्ला गांव से लेकर वजीराबाद तक पुस्ता के भीतर कोई स्थायी बस्ती नहीं है । पुस्ता के भीतर की जमीन यानी यमुना खादर में खेती करने वाले लोग खेती की जमीन पर जहां–तहां झोपड़ियां बनाकर कुछ महीने निवास करते हैं, ताकि वे अपनी फसलों की ठीक से देखभाल और सुरक्षा कर सकें । दिल्ली में पुस्ता के बाहर पुस्ता के करीब के जो गांव हैं, उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – पल्ला, अकबरपुर माजरा, झंगोला, तिग्गीपुर, सुंगरपुर, रमजानपुर, हिरनकी, इंब्राहिमपुर, शंकरपुर, बुराड़ी, जगतपुर, वजीराबाद । पुस्ता के भीतर विभिन्न गांवों के सामने यमुना के तट पर जगह–जगह घाट हैं । जिन घाटों तक पक्की सड़क गई हुई है, उनके भी घाट पक्के नहीं हैं । इन घाटों पर लोग स्नान करते हैं, अपने पशुओं को पानी पिलाते हैं और नहलाते भी हैं । लोग बंसी या जाल से मछलियां भी मारते हैं। कुछ लोग पंपिंग सेट से यमुना का पानी खींचकर अपने खेतों की सिंचाई करते हैं । यमुना खादर की खेतों की भूमि में जगह–जगह बोर करके पानी निकालकर उससे सिंचाई करने का काम लिया जाता है । शंकरपुर के सामने यमुना सबसे ज्यादा चौड़ी है । बुराड़ी और जगतपुर के बीच यमुना अंग्रेजी के एल–आकार की एक झील बनाती है । इस हिस्से में कुछ जमीन ऐसी है जो तीन तरफ – उत्तर, पूरब और पश्चिम (तथा थोड़ा भाग दक्षिण भी) – से यमुना से घिरी है । इस भाग में जंगल है । इसमें एक डाइवर्सिटी पार्क है । इस पार्क के सामने यमुना के पार है सभापुर । यहीं से यमुना के दोनों तरफ है दिल्ली, लगातार ।

● ● ● ●

यमुना के दोनों किनारों पर स्थित जमीन में बड़े पैमाने पर खेती होती है । इसमें कहीं खरीफ की खेती होती है, कहीं रबी की – कहीं दोनों की ही । कहीं अन्न की बजाय साग–सब्जी की खेती होती है, कहीं फूल की । खेती के मौसम में पुस्ता रोड पर खड़ा होकर जिधर देखिए, यमुना कछार में हरियाली ही हरियाली दिखती है । यहां पेड़ हैं, साग–सब्जियों की लतरें हैं, पौधे हैं। मौसम कोई हो, यह पूरा इलाका हरा–भरा दिखता है। बरसात के मौसम में यह हरियाली और भी लहलहा उठती है। इलाके के खेतों में जगह–जगह झोपड़ियां नजर आती हैं – कुछ मुख्य सड़क से सटकर बनी हुईं, कुछ चकरोडों के किनारे बनी हुईं, कुछ खेतों के एक कोने में बनी हुईं। कहीं केवल एक परिवार रहता है, कहीं दो परिवार रहते हैं, कहीं .....पांच–दस परिवार । इन झोपड़ियों में रहने वाले परिवारों के साथ होते हैं इनके कुत्ते, बकरियां, गाय–भैंसें । ये सभी परिवार दिल्ली के बाहर से हैं जो वर्षोंवर्ष से इस इलाके को अपनी कर्मभूमि और आवास–स्थल बनाए हुए हैं – कोई 5 वर्ष से, कोई 10 वर्ष से, कोई 20 वर्ष से, ...तो कोई–कोई 50 वर्ष या उससे भी अधिक वर्ष से इस भूमि के संग–साथ है । एक भी घर पक्का नहीं है । उनके छप्पर और दीवारें सब खर–पतवार, बांस, गत्ता, टीन, प्लास्टिक इत्यादि की बनी हुई हैं । अपनी जरूरत के मुताबिक लोगों ने दो–चार झोपड़ियां बना रखी हैं । ये भूमिपुत्र हैं । इन्हीं की बदौलत इस क्षेत्र में हरियाली है । ये जमीनें इनकी नहीं हैं । इन जमीनों को ये पट्टे पर लेते हैं हर साल

Please do not share this copy without the permission of authors.

। साल–दर–साल इनका किराया बढ़ता जा रहा है । फिर भी ये बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश या अन्य जगह से आकर यहां खेती में डंटे हुए हैं, क्योंकि यह भूमि इन्हें रोजी–रोटी देती है । इनमें से कुछ मजदूर हैं, कुछ किसान । प्रतिदिन की आमदनी नहीं है इनके पास, इसके बावजूद ये यहीं रह रहे हैं वर्षों से । कभी सरकार तो कभी बाढ़ का प्रकोप इन्हें बाध्य करता है कुछ दिन के लिए अपना अड्डा छोड़ने को । जैसे ही स्थिति सामान्य होती है, ये अपनी जगह वापस हो जाते हैं । दिन तो उजाले में गुजरता है, रातें काली–काली होती हैं। अंधियारे का सामना करते हैं लोग दीये जलाकर या टॉर्च से । कहीं–कहीं सौर–ऊर्जा से जलती हैं बत्तियां । यहां बिजली नहीं पहुंची है ।

इंद्रदेव शर्मा बताते हैं,"चिल्ला खादर की जमीन में अब ज्यादा समय तक खेती नहीं होने वाली । यह जमीन डीडीए अपने हाथों में ले चुकी है । इस जमीन का मुआवजा जमींदारों को मिल चुका है । जब–तब डीडीए यहां खेती करने वालों को भगाने की कोशिश करता है, फिर ठंडा पड़ जाता है । इस जमीन का पट्टा हमें जमींदार से मिलता है । जमींदार हमसे जमीन के एवज में रुपया लेता है, किंतु कोई लिखित समझौता नहीं करता हमसे । सबकुछ जुबानी होता है । एक बार डीडीए ने हम पर कार्रवाई शुरू की तो हम जमींदार के पास गए और अपनी समस्याएं बताईं । जमींदार ने कहा 'यह जमीन वैसे ही है । जितने साल इस पर खेती हो रही है, हो रही है । डीडीए जो चाहेगा, वही होगा । हम इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते ।' जमींदार से मिलकर बात समझ में आ गई । हमने मान लिया कि खेती का यह मामला एकदम अस्थाई है । चिल्ला खादर की जमीन से ज्यादा लगाव हमारे हित में नहीं है । खेती आज नहीं तो कल बंद होनी ही है ।"

थोड़ी ही दूर स्थित बगिया नामक बस्ती में पचासेक परिवार रहते हैं । ये सभी परिवार खेती–किसानी से जुड़े हैं । इनमें से कुछेक स्थानीय मूल–निवासी हैं और ज्यादातर हैं बाहरी । ये बाहरी लोग भी दशकों से इस बस्ती में रहकर खेती कर रहे हैं । इस बस्ती के लोग खेती के साथ–साथ पशु–पालन भी करते हैं – खासकर दुधारू पशु पालते हैं : गायें, भैंसें, बकरियां । यह इलाका नंगली खादर का है । पशु–पालन से किसानों को दो तरह से आमदनी होती है – एक तो दूध बेचने से, दूसरे पशु को बेचने से । इसी बस्ती में रहते हैं उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले के एक गांव के मूल–निवासी सर्वेश कुमार । हमने देखा कि सर्वेश कुमार की पत्नी खेत में घास काट रही थी । हमने पूछा,"क्या खेती की निकौनी की जा रही है ?" सर्वेश कुमार ने बताया,"घिया और तोरी की लत्तर जिस खेत में फैली रहती है उसकी निकौनी नहीं की जाती – निकौनी करने से इन सब्जियों के फल सीधे मिट्टी के संपर्क में आ जाते हैं और उनमें जगह–जगह दाग लग जाते हैं । दागदार फल पसंद नहीं करते हैं लोग ।"

मदनपुर खादर के ज्यादातर किसान दो–चार बीघे खेती करते हैं । दस–बीस बीघा खेती करने वाले किसान थोड़े ही हैं। कहीं–कहीं 'फार्म' श्रेणी वाली भी भूमि है । मदनपुर खादर से आगे जैतपुर की ओर बढ़ने पर पुश्ता रोड के दोनों तरफ कॉलोनियां हैं । जैतपुर खादर की जमीन का 50 प्रतिशत ही खेती के काम आता है शायद । बड़े किसान अपने खेत की जुताई ट्रैक्टर से करते हैं और छोटे किसान खुरपी या कुदाल से । छोटे किसान छोटी–छोटी क्यारियां बनाकर उनमें साग–सब्जियां उगाते हैं । विभिन्न क्यारियों में फसलों की भी विविधता होती है । कई छोटे किसान गली मुहल्ले में साइकिल रिक्शा ठेला से फेरी लगाकर सब्जियां बेचते हैं – कुछ अपने खेत में उपजी सब्जियां, कुछ दूसरों के खेत में उपजी सब्जियां । छोटे किसानों के बीबी–बच्चे पुश्ता रोड पर टोकरियों में थोड़ी–थोड़ी सब्जियां बेचते दिखते हैं । पुश्ता रोड पर आवाजाही खूब है, हालांकि यह सड़क संकरी है । यदि यमुना खादर की खेती की जमीन का नजारा देखना हो तो इस पुश्ता रोड पर खड़े हो जाइए और अपनी दृष्टि इधर–उधर दौड़ाइए–लाल चौलाई, हरी चौलाई, तोरी की हरी–हरी पत्तियां और पीले–पीले फूल, मिर्च के हरे–हरे पौधे, हरी पालक.....साथ में खेत की मेंड़ें दूर–दूर तक दिखती हैं ।

नेत्रपाल नामक किसान का कहना है,"समय थोड़ा आगे–पीछे हो सकता है, किंतु खेती में लापरवाही साथ न देगी । समय पर पानी देना ही होगा । समय पर सब्जी की तोड़ाई करनी ही होगी । यदि ऐसा न करेंगे तो

Please do not share this copy without the permission of authors.

खेती घाटे का सौदा होगी । फसल की बुवाई भी समय के अनुसार करनी होती है ।" कमाई बेशक कम है खेती में, लेकिन संतोष ज्यादा है । किसानी अनिश्चितता के बीच भी ज्यादा धैर्य के साथ जीना सिखाती है । नौकरी और ज्यादा, और ज्यादा का असंतोष पैदा करती है । यों ही नहीं कहा गया है – उत्तम खेती, मध्यम बान, नीच चाकरी, भीख निदान ।"

बदरपुर एकदम अलग किस्म का गांव है । यह यमुना नदी के पार है । यह पूर्वी दिल्ली नगर निगम का क्षेत्र है, लेकिन यह दिल्ली की मुख्य भूमि से अलग–थलग है । यहां आने–जाने के लिए उत्तर प्रदेश के किसी न किसी क्षेत्र से गुजरना पड़ता है । पहले यह गांव यमुना के किनारे था । अब यह यमुना से थोड़ी दूर पर यमुना के पूर्वी पुश्ते के पास पश्चिम में स्थित है । चौहान पट्टी, सभापुर बस टर्मिनल से आगे लोनी की ओर बढ़ने पर पुश्ता से सटा है यह गांव । इस गांव के दक्षिण और उत्तर में ठोकर है और पूरब में है पुश्ता । गांव को बाढ़ से बचाने के लिए इस गांव के लोगों ने पश्चिम से भी एक कच्चा पुश्ता बना लिया है । वे हर साल इस कच्चे पुश्ते की मरम्मत करते हैं ताकि यह मजबूत बना रहे और बाढ़ के पानी को गांव में प्रवेश करने से रोक सके ।

यह गांव मुस्लिम–बहुल आबादी वाला है । रहीसुद्दीन इसी गांव के निवासी हैं । इनकी उम्र है 42–43 साल । इनका कहना है, "इस गांव में रहने वाले ज्यादातर लोग किसी न किसी रूप में खेती–किसानी के पेशे से जुड़े हैं । कोई जमींदार है, कोई किसान है, कोई खेतिहर मजदूर है । मैं भी एक किसान हूं । मेरे पास अपनी जमीन नहीं है । मैं दूसरे की जमीन उगाही पर लेता हूं और उसमें खेती करता हूं ।"

PEOPLE'S RESOURCE CENTRE

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–2

किसान : खेत से दूर या पास

मुंडका गांव के राजकुमार शर्मा का कहना है,"1975 के बाद मुंडका बहुत तेजी से बदला है । 1970 में दिल्ली में चकबंदी हुई । यही समय कृषि–क्रांति का है । पहले खेती एकदम परंपरागत तरीके से होती थी । हल से खेत की जुताई होती थी । जिस किसान के पास जितनी खेती की जमीन होती थी, वह उसी के हिसाब से बैलों की जोड़ी रखता था –एक जोड़ी, दो जोड़ी, तीन जोड़ी, चार जोड़ी .....। कुछ किसानों के पास बहुत थोड़ी जमीन होती थी । वे एक–एक बैल रखते थे और दो किसान मिलकर एक हल से एक–दूसरे की जमीन साझे में जुताई करते थे । गांव में ऐसे लोगों की भी बड़ी तादाद थी जिनके पास खेती की अपनी कोई जमीन नहीं थी । ये लोग किसानों के खेतों में मजदूरी किया करते थे । खेत की जुताई, बुबाई, रोपनी, निकौनी, कटाई आदि में इन मजदूरों की जरूरत होती थी ।"

इसी गांव के रोशन लाल लाकड़ा कहते हैं,"हमारे पास 50 बीघा जमीन थी । यानी 10 एकड़ । मैं भाई में अकेला था । मेरी तीन बहनें थीं । खेती में सभी भाई–बहिन लगते थे । पूरा परिवार लगता था । समय–समय पर मजदूरों की भी मदद ली जाती थी । तब हल–बैल वाली खेती थी । 1970–75 तक मुंडका में हल–बैल की मदद से खेती करते रहे हैं । बाद में ट्रैक्टर और अन्य मशीन के सहारे खेती होने लगी ।" मुंडका में अब खेती की जमीन मामूली है ।

किराड़ी के युगवीर सिंह दिल्ली के बारे में टिप्पणी करते है,"दिल्ली के पारंपरिक किसान खेती से विमुख हो गए हैं । इसका मुख्य कारण है कि खेती लाभदायक नहीं है । दिल्ली में बाहर से आकर बसने वाले लोग खेती कर रहे हैं । उनका पूरा परिवार खेती में लगता है – पत्नी, बच्चे सभी । यह पेट पालने वाली बात है । उनके बच्चों को समुचित शिक्षा नहीं मिल पाती है । वे खेतों के बीच झोपड़ी बनाकर गुजारा करते हैं । मेहनत बहुत करते हैं । सुबह से शाम तक खेतों में लगे रहते हैं । वे खेतों में सालोंभर कुछ न कुछ उपजाते रहते हैं – सब्जियां, शाक, खीरा–ककड़ी, पुदीना, आदि–आदि । अपनी उपज बेचने के लिए सड़क के किनारे फुटपाथ पर भी बैठ जाने में संकोच नहीं करते । दिल्ली के किसानों के बेटे नौकरी–चाकरी की ओर मुड़ गए हैं ।"

लाडपुर के होशियार सिंह बताते हैं," मैं डीटीसी से अवकाश–प्राप्त कर्मचारी हूं, बस की ड्राइवरी करता था । अगर वह नौकरी न होती तो घर संभालना मुश्किल होता । मेरे पास खेती की अपनी जमीन है महज 1 किला । 1 किला माने पौने पांच बीघे जमीन यानी 4750 वर्ग गज । परिवार बढ़ता गया और बंटता गया । परिवार बंटा तो जमीन भी बंटी । अब मेरे हिस्से में कुल इतनी ही जमीन है । गांव के तमाम परिवारों की यही कहानी है । जनसंख्या का बढ़ना प्राकृतिक नियम है, जमीन तो बढ़ने से रही ! हां, जमीन पर होने वाली उपज बढ़ाई जा सकती है । लेकिन उसके लिए अनुकूल परिस्थितियां होनी चाहिए । लाडपुर गांव के किसान विपरीत परिस्थितियों में खेती–किसानी कर रहे हैं। उपज बढ़े कैसे !"

बक्करगढ़ गांव के वेदपाल खर्ब कहते हैं, "कुएं से पानी निकालने के लिए सबसे पहले ढेंकुली का उपयोग होता था । इसके बाद चिड़स का जमाना आया। तब रहट आया । चिड़स (मोट) और रहट बैलों से ही चलाए

Please do not share this copy without the permission of authors.

जाते थे । इन साधनों से ज्यादा खेत न तो जोता जा सकता था, न सींचा जा सकता था । इसके बाद आया पंपिंग सेट और बिजली का मोटर । इनसे खेत सींचना आसान तो हुआ, लेकिन भू जल–स्तर जल्दी–जल्दी नीचे जाने लगा । अब तो समरसिबुल के बिना काम नहीं चलता । रहट 1965 तक रहे । रहट चलाने के लिए 30 फीट से लेकर 70 फीट तक गहरे कुंएं खोदे जाते थे । ये कुंएं पक्के होते थे ।"

उन दिनों के गांव–समाज के बारे में चर्चा करते हुए वे कहते हैं, "वह वस्तु–विनिमय का जमाना था । लोगों के पास पैसों का अभाव था । कुम्हार, लोहार, नाई, खाती (बढ़ई), मोची, दर्जी (छिपी), भंगी (सफाई वाला) आदि किसान पर ही निर्भर थे । वे अपनी सेवाओं के बदले अनाज लेते थे । इन सभी के साथ किसान का पुश्तैनी रिश्ता था । वस्तु–विनिमय की प्रणाली का खात्मा पूर्ण रूप से अब भी नहीं हुआ है – गांव में यह परंपरा जीवित है । पहले घर मिट्टी की दीवार वाले थे । बाद में ईंट की दीवारें बनने लगीं । ये ईंटें लोग खुद बनाते थे या कुम्हार बनाता था । घर का ऊपरी हिस्सा यानी छप्पर बांस और फूस से बना होता था । 1945–50 तक सभी के घर ऐसे ही थे । बाद में लोगों की आमदनी बढ़ने लगी तो पक्के मकान बनने लगे । अब तो पूरा गांव पक्के मकानों वाला है । हर घर में नौकरी–पेशा वाले लोग हैं । सरकारी नौकरी करें या प्राइवेट – घर में पैसे आ रहे हैं । पहले हर घर में चरखा चलाकर सूत काता जाता था । उसी सूत से बना कपड़ा पहनते थे लोग । ओढ़ने–बिछाने के काम भी वही सूती कपड़ा आता था । शादी–ब्याह के मौके पर बाजार से कपड़ा आता था । खेती में मशीनीकरण ने खेती की तस्वीर बदल दी है । 1976 तक मैंने खुद हल चलाया है । उसी साल मैंने ट्रैक्टर खरीदा और उसी से खेती के कई काम लेने लगा ।"

जौंती गांव के उमरांव छिकारा खेती के पुराने दिनों को याद करते हैं, "जब परिवार संयुक्त था, हमारे घर 1965 में एक ट्रैक्टर आया – डीटी–14 खरीदा हमने । उसकी कीमत थी 9 हजार 200 रुपये । तब 210 लीटर डिजल की कीमत थी मात्र 200 रुपये । 1970 में हमने एक और ट्रैक्टर खरीदा – 'स्वराज्य' । इसकी कीमत थी 33 हजार 600 रुपये । जब हम भाइयों में बंटवारा हो गया तो हमने ट्रैक्टर बेच दिए । तब मैंने हल–बैल से खेती शुरू की । 1980–85 के बीच ट्रैक्टर बेचा था हमने । मैंने 13 साल तक हल–बैल से खेती की है । इसके बाद ट्रैक्टर से ही खेती की है – किराया देकर जुताई–बुवाई कराई है ।"

पानी की उपलब्धता के बारे में पंजाबखोड़ गांव के सतवीर फौजी का कहना है, "हमारी धरती खारा पानी पी रही है । नहर का मीठा पानी दिल्ली के किसी भी किसान को खेती के लिए उपलब्ध नहीं हो रहा है । हम सरकार से कहना चाहते हैं कि दिल्ली प्रदेश को पुनः कृषि–क्षेत्र घोषित किया जाए । एक सरकार यदि इसे गैर–कृषि क्षेत्र घोषित कर सकती है तो दूसरी सरकार उसे उलट भी सकती है । दिल्ली को गैर–कृषि क्षेत्र का दर्जा यहां के किसानों के साथ ना–इंसाफी है । हमें मीठा पानी उपलब्ध कराने की हर कोशिश की जानी चाहिए । एक बड़ी परेशानी है बिजली बिल । किसान 7 किलोवाट का मोटर इस्तेमाल करता है धरती के नीचे से पानी निकालने के लिए । मेरे एक ट्यूबवेल का बिजली बिल हर माह 2000 रुपये से ऊपर–ऊपर आता है । जिस महीने शून्य यूनिट बिजली खर्च होती है उस महीने भी बिजली का बिल होता है 825 रुपये । यह तो खेती–किसानी को बर्बाद करने वाला कदम है सरकार का । हम कहते हैं कि जब दिल्ली प्रदेश में कृषि होती ही नहीं है सरकार की नजर में, तो नजफगढ़ और नरेला में अनाज की मंडियां क्यों चला रही है दिल्ली सरकार !"

तिग्गीपुर गांव के वेदपाल सिंह आजकल मशरूम की खेती करते हैं इनके अनुसार, "मशरूम की खेती के वास्ते मैंने शाहबाद डेरी से मोटा बांस खरीदा है डेढ़ लाख रुपये का और पतला बांस खरीदा है 75 हजार रुपये का । तूड़ा खरीदा है मैंने 800 मन, 700 रुपये प्रति क्वींटल की दर से । 40 हजार रुपये का तो मुर्गी का बीट खरीदा है । यह बीट गन्नौर से आई है । गेहूं की चोकर आई है 40 कट्टे । एक कट्टे चोकर की कीमत है 640 रुपये । एक कट्टे में 35 किलोग्राम चोकर आती है । पोटाश, यूरिया और अमोनियम सल्फेट खाद 20 हजार रुपये की है । इस मशरूम की खेती के लिए 6 मजदूर लगातार हैं और रहेंगे । एक मजदूर की तनखाह

Please do not share this copy without the permission of authors.

है 10 हजार रुपये प्रतिमाह । ये छह माह काम पर होंगे । गेहूं के बीज में केमिकल मिलाने से वह बोए जाने पर मशरूम उपजाता है । वह बीज होगा 40 हजार रुपये का । मैंने कुल हिसाब लगाया है – 8 लाख रुपये से कम का खर्चा नहीं है ।"

अध्याय–3

फार्म से फार्महाउस तक

पहले खुले खेतों में खेती होती थी । खेतों में लहलहाती फसलें दूर से ही दिख जाती थीं । अब वैसी खेती धीरे–धीरे घटती जा रही है । संपन्न लोग किसानों से खेत खरीदते जा रहे हैं और उसके चारों ओर दिवारें खड़ी करते जा रहे हैं । दीवारों से घिरे इन खेतों को फार्म कहने का रिवाज है । इन्हें कृष्णा फार्म, अग्रवाल फार्म, आशीर्वाद वाटिका, श्री कृष्ण वाटिका ''''''' इत्यादि नाम देने की परंपरा चल पड़ी है । कम ही फार्मों में खेती होती है । ये फार्म और वाटिकाएं आमतौर पर शादी–विवाह तथा अन्य समारोहों के लिए किराए पर उपलब्ध कराए जा रहे हैं । उत्तरी दिल्ली में खासतौर पर ऐसे कई सारे फार्म हैं । दूसरी ओर, इन फार्मों में संपन्न लोगों ने अपना विशाल आशियाना बना लिया है । दिल्ली का सैनिक फार्म खासतौर पर चर्चा में रहता है । इसके बावजूद कई सारे किसान आज भी फार्मों में खेती कर रहे हैं ।

पल्ला के विशाल शौकीन इन्हीं में से एक हैं । इनका कहना है, "हम इस फार्म में परंपरागत फसलों के अलावा अनेकानेक नई किस्म की फसलें लगा रहे हैं । गेहूं और धान की खेती एक–एक एकड़ करते हैं हम । शिमला मिर्च आठ रंग की होती है । हम चार रंग की शिमला मिर्च उपजा रहे हैं – लाल, पीली, हरी, नारंगी । चेरी–टमाटर के तीन रंग की फसल उपजाते हैं हम – लाल, पीला, नारंगी । ये टमाटर दो आकार के हैं – गोल और लंबा । इंगलिश खीरा बिना बीज वाला होता है । इसकी भी खेती करते हैं हम । हम प्याज की दो किस्में (लाल प्याज, सफेद प्याज) साग के तौर पर पैदा करते हैं । हम लहसुन भी साग के तौर पर ही उपजाते हैं । पालक, मेथी, सरसों के साग भी पैदा करते हैं हम । हम घिया, तोरी, मूली, मटर, बांकला, तरबूज, खरबूज, भी लगाते हैं । हम पत्ता गोभी, गांठ गोभी, फूल गोभी की भी खेती करते हैं । अरबी केवल अपने परिवार की जरूरत भर पैदा करते हैं हम । इस फार्म में मूंगफली और स्ट्राबेरी की भी खेती होती है । अनेक तरह की सलाद वाली पत्तियां यहां पैदा की जाती हैं । यहां धनियां उपजाई जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि हम नए–नए प्रयोग में लगे हुए हैं और यह जानने की कोशिश में हैं कि हमारी जमीन में क्या–क्या चीजें उपज सकती हैं और उनकी बेहतर उपज लेने के लिए हमें क्या–क्या करना होगा।" स्मरणीय है कि विशाल शौकीन ग्रीन हाउस में खेती करते हैं और खुले खेतों में भी ।

बुराड़ी में निरंकारी संत समागम का परिसर है । इस परिसर में भी खेती होती है । "यहां कितनी जमीन में खेती होती है ?" इस प्रश्न के उत्तर में रामकिशन जी का जवाब था, "हम मौसम के हिसाब से खेती के लिए फसल का चुनाव करते हैं । हम 28 किले में धान की खेती करते हैं । इस समय धान लगा है – 1209 बासमती । फसल तैयार होने पर यह धान 30–35 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से आसानी से बिक जाता है । इस धान की रोपनी 7 जुलाई के बाद होती है और कटाई 15 अक्टूबर के आसपास । इस धान को रोपने के लिए मजदूर बिहार से आते हैं । इसकी कटाई मशीन से होती है । मशीन धान के दाने को संग्रहित करती जाती है और पुआल को खेत में बिखेरती जाती है । हम बाद में पुआल को इकट्ठा करके एक जगह रखकर सड़ा देते हैं। यह खाद के रूप में काम आता है । खाली खेत की जुताई के बाद हम इसमें गेहूं लगाते हैं ।

Please do not share this copy without the permission of authors.

हम गेहूं की कटाई के बाद उसके डंठल से भूसा तैयार कराते हैं । इस भूसे का इस्तेमाल अपनी गौशाला की गायों के लिए किया जाता है ।" रामकिशन जी थोड़ा रुकते हैं और अपनी बात जारी रखते हुए कहते हैं, "हम एक किला जमीन में पशुओं के लिए हरा चारा उपजाते हैं । मक्की और बरसन इन्हीं दो फसलों का उपयोग हम हरा चारा के रूप करते हैं ।"

हम जैसे ही वसंतकुंज के जुपैक्स फार्म में प्रवेश करते हैं हमें एक बोर्ड पर लिखा मिलता है –you are entering in zero waste farm. इस फार्म में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता । यहां जैविक खेती की जाती है । पेड़ों और पौधों की पत्तियां हों या अन्य खरपतवार – सबकी खाद तैयार की जाती है । कपिल मंडावेवाला बताते हैं,"हम अपने ग्राहकों के लिए खेती करते हैं । लोग हमसे जमीन किराये पर लेकर उसमें खेती कराते हैं । 150 वर्ग गज की जमीन पर खेती के लिए हम उनसे 5000 रुपये प्रतिमाह की दर से किराया लेते हैं । हम उनके मनमाफिक मौसमी साग–सब्जियां लगाते हैं । बीज, खाद, पानी, मजदूर–सबकुछ का खर्चा हम उठाते हैं । फसल की देखरेख का जिम्मा भी हमारा है । हम किसी भी तरह के रसायन का उपयोग नहीं करते हैं। गोबर की खाद हम गौशाला से मंगाते हैं । इस फार्म में हर–हमेशा 10 मजूदर काम करते हैं । यहां साग–सब्जी उगवाने वाले हमारे कुल ग्राहक हैं 70, आली फार्म में ग्राहक हैं 50 और दमाली फार्म में ग्राहक हैं लगभग 120 । कुल 250 ग्राहकों को संभालने की क्षमता है तीनों फार्मों की । जाड़े की इस सीजन में जो सब्जियां लगाई गई हैं उनके नाम हैं – बंद गोभी, फूल गोभी, गांठ गोभी, ब्रोकली, चुकंदर, मूली, गाजर, पालक, धनिया, मेथी, सरसों, सेमफली, फ्रेंचबीन, टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, शलगम, मटर, सलाद पत्ते, प्याज, लहसुन, पुदीना आदि । हम गर्मी के मौसम में जो साग–सब्जियां लगाते हैं उनमें शामिल रहती हैं – खीरा, ककड़ी, लौकी, तोरी, भिंडी, ग्वार की फली, अरबी, टींडा, सीताफल, बैंगन, पलवल, कुदरुन, आदि । मौसमी सब्जियों में कीड़े कम लगते हैं । इसलिए इन्हें हटाने के लिए कीटनाशक की जरूरत भी नहीं पड़ती ।"

कपिल मंडावेवाला हमें बताते हैं कि उन्होंने पारंपरिक खेती के सकारात्मक पक्षों को लेते हुए कुछ नए तौर–तरीकों को अपनाया है । सिंचाई के लिए टपक–पद्धति का उपयोग एक ऐसी ही बात है । इनके अनुसार, "टपक–पद्धति से सिंचाई में पानी की खपत 80 प्रतिशत तक कम हो जाती है । पारंपरिक तरीके की सिंचाई में जितने पानी से एक एकड़ सींची जा सकती है, टपक–पद्धति में उतने जल से 5 एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकती है । यह बड़ा फर्क है ।"

आली फार्म में फलदार वृक्ष भी हैं । फजल रशीद यह बताते हैं,"हमारे फार्म में खेती कराने वाले किरायेदार लगभग 250 हैं। हमारी संस्था के जरिए छत पर खेती कराने वाले किरायेदार 500 हैं । इसके अलावा और भी लोग हमारे संपर्क में हैं । इसलिए फलों की बिक्री हमारे लिए कोई समस्या नहीं है । लेकिन फलों को पक्षियों से कैसे बचाया जाए, यह बड़ी समस्या है । आंवले में कीड़े नहीं लगते और न ही पक्षी उसके फल खाते हैं । किंतु बेर पर दिन में पक्षी और रात में चमगादड़ हमला करते हैं । अमरूद और आम पर तोते टूट पड़ते हैं । अन्य फलों पर भी कोई न कोई पक्षी आ बैठता है । कई लोग हमसे संपर्क करते हैं और कहते हैं कि हम उन्हें यह बगीचे ठेके पर दे दें । वे रातदिन इसकी रखवाली करेंगे और फल मार्केट में बेचेंगे । हम उन्हें बगीचा देना नहीं चाहते, क्योंकि वे रासायनिक खाद और दवा का उपयोग करके फलोत्पादन करेंगे । इससे हमारा मकसद ही पराजित हो जाएगा, यद्यपि हम आर्थिक तौर पर फायदे में होंगे । हम रासायनिक खेती के विरुद्ध हैं, क्योंकि यह पर्यावरण को क्षति पहुंचाती है । साग–सब्जी हो या फलोत्पादन या और भी कुछ – हम कार्बनिक खेती–किसानी के पैरोकार हैं ।"यह बात स्मरणीय है कि कपिल मंडावे वाला और फजल रशीद 'इडिबुल रूट्स' नामक संस्था से जुड़े हैं ।

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–4

छोटी–छोटी खेतियां, बड़ा संदेश

शहर के अंदर भी जिसको जहां जगह मिलती है, वह वहां अपनी रुचि के अनुसार खेती करता है । कोई छत पर, कोई दरवाजे के दोनों तरफ सड़क के किनारे, तो कोई आसपास खाली प्लॉटों में खेती करता है । कुछ लोग अपने ही प्लॉट में मकान के आगे–पीछे जमीन छोड़े रहते हैं और उसमें क्यारी बनाकर या गमलों में खेती करते हैं । यह खेती आर्थिक फायदे के लिए नहीं की जाती, बल्कि इसका उद्देश्य होता है पर्यावरण के अनुकूल वातावरण का निर्माण करना, मन के अनुकूल कुछ काम करना या खाली समय को प्रकृति के संग साझा करना, आदि–आदि ।

लाल सिंह जामवाल शस्त्र सीमा बल से अवकाश–प्राप्त व्यक्ति हैं । इनकी उम्र है 71 साल । ये नजफगढ़ के गोपाल नगर में रहते हैं और अपने घर के पिछले हिस्से में जो खाली जमीन है उसमें खेती करते हैं ।

इनकी इस जमीन में अमरूद के दो पेड़ हैं, एक पेड़ संतरे का है । एक पेड़ पपीते का है, एक पेड़ मीठी नीम का है । एक पेड़ नीबू का है – बड़े नीबू का । पेड़ के अतिरिक्त इनकी बागवानी में मनीप्लांट, तुलसी, सीताफल, चौलाई, बीन, तोरी, हल्दी, अश्वगंधा, पुदीना इत्यादि के पौधे या बेल हैं । छह–सात किस्म के और भी सजावटी पौधे हैं इनकी इस जमीन में । इनका कहना है, "मैं खेती आनंद के लिए करता हूं । मैंने जो लगाया है, उसमें से क्या फूलेगा–फलेगा इसकी चिंता मुझे नहीं है । घर में हरियाली है और मैं प्रकृति के संग हूं , यह मेरे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि है । मैं जो खेती करता हूं उसमें रासायनिक खाद का इस्तेमाल नहीं करता ।"

घनश्याम सिंह भी गोपाल नगर में ही रहते हैं । ये पौधों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "मेरी तरह छोटी–छोटी खेती करने वाले लोग खाद्य की समस्या को सुलझाने में कोई मदद नहीं करते; लेकिन प्रकृति और समाज के बीच एक स्वस्थ रिश्ता कायम रहे, इसमें तो योगदान करते ही हैं । और नहीं तो खेती करने वाले लोग कम से कम अपने तन–मन को स्वस्थ रखते ही हैं । मुझे टाइम पास करने की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता । मुझे सुगंधित हवा और हरी–भरी प्रकृति के संग रहने का हर समय मौका मिलता है ।"

रीता धर्मरीत बुराड़ी में रहती हैं और अपनी छत पर खेती करती हैं। ये इस बात का विशेष उल्लेख करती हैं कि इन पौधों ने उनके लिए प्रचुर साहित्य सामग्री प्रदान की है । "मैं पौधों के बहाने अपनी छत पर आती हूं तो दूसरों की छत पर भी नजरें चली जाती हैं। किसकी छत पर क्या–क्या हो रहा है, इसका ज्ञान होता है । कहीं साग–सब्जी की खेती दिखती है, कहीं सोते–जागते–काम करते मजदूर; कहीं अध्ययन करते विद्यार्थी तो कहीं हंसी ठठा करते लोग । इस अवलोकन से मेरे अंदर कई कहानियां जन्मी हैं और मुझे उन्हें कागज पर उतारने का मौका मिला है । कई बार ऐसा हुआ है कि किसी की छत पर बागवानी देखकर उससे मिलने की

Please do not share this copy without the permission of authors.

तबीयत हुई है और हमने उनके घरों के चक्कर लगाए हैं । कुल मिलाकर इन पौधों ने मेरी दुनिया का, मेरी संवेदना का विस्तार किया है। "

बीना सुखीजा लक्ष्मीनगर में रहती हैं। "पौधों को हानि पहुंचाने वाले जीव–जंतुओं से कैसे बचाती हैं ?" इस सवाल को पूछते ही बीना सुखीजा हमें अपनी बालकनी में ले जाती हैं । बालकनी में कई तरह के पौधे हैं गमलों में और इनकी सुरक्षा के लिए नेट टंगा हुआ है । बीना कहती हैं, "हमें कबूतर परेशान कर रहे हैं । इस नेट के बावजूद वे अंदर आ जाते हैं । वे ऐसी जगह तलाश ही लेते हैं जहां नेट और दीवाल के बीच थोड़ी सुराख है । गिलहरियां भी उत्पात मचाती हैं । इन दिनों मैं गार्डेनिंग करने वालों को अपनी रचनाओं के माध्यम से सलाह दे रही हूं कि वे अपने पालतू पशुओं (कुत्ता, बिल्ली, और खरगोश) से अपने गार्डेन की रक्षा कैसे करें । छत पर खेती को बंदर भी नष्ट करते हैं। ज्यादातर मामलों में मजबूत सघन जाल से पौधों की रक्षा हो जाती है । कीटों से बचाव के लिए प्राकृतिक पदार्थों का ही उपयोग होना चाहिए । रासायनिक कीटनाशक पर्यावरण को क्षति पहुंचाते हैं ।"

आर.के. श्रीवास्तव पटपड़गंज के सहविकास अपार्टमेंट में रहते हैं । श्रीवास्तव जी की बगिया में कई किस्म के नागफनी के पौधे हैं । ये कुछ किस्मों को दिखाते हुए कहते हैं,"इनमें वर्षों से पानी नहीं दिया गया है । ये पौधे हवा से जल ग्रहण करके जीवित रहते हैं । इनमें से एक का नाम है –Mother in law's tongue(सास की जुबान), दूसरे का नाम है सेसुलेंट । मैंने कई सारी बोनसाइयां तैयार की हैं । ये बोनसाइयां विभिन्न पौधों की हैं । मेरे यहां पीपल के दो किस्मों की बोनसाइयां हैं । चीकू के दो पौधे हैं । इनकी बोनसाइयों में फल आते हैं । अमरूद की बोनसाई में भी फल लगते हैं सुपारी के बराबर आकार वाले । मेरे यहां बरगद की भी कई बोनसाइयां हैं । बरगद के बौने पौधे पहले तश्तरियों में थे । अब इन्हें दूसरे बर्तनों में लगाया है मैंने । मेरी बगिया में बांस की भी एक बोनसाई (बौना) है । एक गूलर की बोनसाई हुआ करती थी, अब नहीं है । कई सारी पाम की बोनसाइयां हैं । ये बोनसाइयां उनके पप (बगल से फूटने वाले अंकुर) से तैयार की गई हैं ।"

PEOPLE'S RESOURCE CENTRE

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–5

खेती–किसानी में मजदूर

खेती के काम में श्रम की खास भूमिका रही है । खेती का यंत्रीकरण होने के बावजूद दिल्ली में धान रोपने, धान काटने, मशरूम की खेती करने, फूल तोड़ने, आदि कामों में बहुतेरे मजदूर लगे रहते हैं । ये मजदूर सब्जी के खेतों से घास निकालने और सब्जी की तुड़ाई करने में भी लगते हैं । इन मजदूरों को खिलाने के लिए इनके रसोइया के तौर पर भी कुछ मजदूर काम करते हैं । इन मजदूरों की अपनी कथा–व्यथा है, अपने अनुभव और सपने हैं । आजादी के पहले दिल्ली के कृषि–कार्य में जो मजदूर लगते थे, वे स्थानीय हुआ करते थे। उनकी मजदूरी आमतौर पर अनाज में दी जाती थी, नगदी का प्रचलन नहीं था । आजादी के बाद देश के विभिन्न कोनों से लोग दिल्ली में आए हैं – उनमें से कुछ को कल–कारखानों में काम मिला है; कुछ को दुकानों में । दिल्ली में निर्माण–कार्य भी एक फलता–फूलता व्यवसाय है । इसमें भी बड़े पैमाने पर मजदूरों की मांग रही है । किंतु बेरोजगारी इतने बड़े पैमाने पर है कि विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों के पास नियमित काम नहीं है । इसलिए उन्हें जो काम मिल जाता है, वही काम वे कर लेते हैं । कुछ लोग कृषि–क्षेत्र में काम को प्रमुखता देते हैं, क्योंकि अपने गांव में भी वे कृषि–कर्म का एक हिस्सा रहे हैं। खेती के काम का हुनर उन्हें इस दिल्ली में भी आजीविका दिलाने में मदद करता है । दिल्ली में हमें ऐसा मजदूर मिलना लगभग असंभव है, जो केवल कृषि–कर्म पर आश्रित रहकर रोज–रोज काम पाता है । कृषि–कर्म उसका आंशिक पेशा है । अपनी रोजी–रोटी को ज्यादा सुनिश्चित करने के लिए उसे अन्य पेशों के काम भी करने ही होते हैं ।

तिग्गीपुर इन दिनों नई तरह की खेती की प्रयोग–भूमि बना हुआ है । यहां धान की खेती होती है और गुलाब की भी । हमने दिल्ली में बड़े पैमाने पर केले की खेती यहीं देखी है – चाहे वह एक सोसाइटी बनाकर ही क्यों न की गई हो । इस इलाके में मशरूम की खेती भी खूब हो रही है – कई किसान इस दिशा में सक्रिय हैं । जहां केले का बागवान है, ठीक उसके सामने एक कंपनी विभिन्न फल–सब्जियों के बीज का उत्पादन कर रही है – एक बड़े फार्म के विभिन्न खेतों में । इन दिनों आसपास धान के पौधों से उसके दाने बिलगाने के काम में लगे हैं सैकड़ों मजदूर । मशरूम की खेती की तैयारी में भी इससे कम मजदूर न लगे होंगे ।

तिग्गीपुर, सुंगरपुर, पल्ला आदि गांवों में धान की खेती होती है । इन गांवों में धान की खेती के लिए काम करने वाले मजदूर स्थानीय नहीं होते । ये मजदूर आमतौर पर बिहार से आते हैं । ये मजदूर समूह में आते हैं, समूह में काम करते हैं और समूह में विदा होते हैं । इन मजदूरों का एक अगुआ होता है । उसी के निर्देशन में ये काम करते हैं ।

चंदू की टोली (समूह) में 24 मजदूर हैं । यह बिहार के मधुबनी जिले से हैं ।

"आप कितने समय तक यहां रहेंगे ?"

Please do not share this copy without the permission of authors.

इसका कहना है, "हमें इस सीजन में जितने दिन तक काम मिलेगा, उतने दिन यहीं रहेंगे । जब काम न मिलेगा, हम वापस चले जाएंगे । यह अवधि आमतौर पर एक से दो माह के बीच होती है ।" हम धान के मौसम में दो बार आते हैं । एक बार रोपनी के समय, दूसरी बार कटनी के समय ।"

एक और मजदूर बताता है, "नौ साल से मैं मशरूम की खेती के काम से जुड़ा हूं । पहले हम हरियाणा के समालखा गांव में यही काम करते थे । हम एक समूह के तौर पर काम करते हैं । इस साल हम दिल्ली में हैं । हम पहली बार दिल्ली में मशरूम की खेती से जुड़े हैं ।" इस तरह रोपनी, सोहनी, बोवनी, आदि के काम में हजारों–हजार मजदूर काम करते हैं ।

अध्याय–6

खेती में स्त्रियों का योगदान

घर में स्त्रियां हैं और खेत–खलिहानों में भी । ये स्त्रियां खेती–किसानी के विभिन्न कामों में भी शामिल हैं । किसान स्त्रियां तो गिनी–चुनी ही हैं, लेकिन मजदूर और चरवाहे के रूप में उनकी अच्छी–खासी उपस्थिति है । हाट–बाजारों में सब्जी–भाजी बेचती स्त्रियां भी मिल जाती हैं । खेती–किसानी के काम में इनके लगने के अपने–अपने कारण हैं । इन स्त्रियों के अनुभव और विचार में काफी भिन्नता है ।

जगतपुर गांव की मूलवासी हैं रुखसाना । रुखसाना एक भूमिहीन किसान हैं । यह जगतपुर गांव के एक गुर्जर जमींदार की जमीन पर खेती करती हैं । उस दिन हम यमुना किनारे के खेतों में चल रही गतिविधियों की पड़ताल कर रहे थे । एक खेत की क्यारी में चार आदमी सोहनी कर रहे थे । इनमें से दो पुरुष थे ओर दो स्त्रियां। एक पुरुष 70 वर्ष का था, दूसरा 27–28 साल का । दोनों स्त्रियां 64–65 साल की आयुवाली थीं । दोनों सलवार–समीज पहले हुए थीं और सिर पर मुरेठा की तरह लपेटे हुई थीं अपनी चुन्नियां ।

रुखसाना कहती हैं, "मैं कई वर्षों से खेती कर रही हूं – साग–सब्जी की खेती । इसी खेती से मेरी आजीविका चलती है । यह जमीन किराये की है । यहां की ज्यादातर जमीनें जगतपुर के गुर्जरों की हैं। ग्रामसभा की जमीनें भी उन्हीं के कब्जे में हैं । इस गांव का कोई भी आदमी उनके सामने चूं नहीं बोल सकता । इस गांव में लगभग 200 परिवार मुसलमान हैं । शायद ही किसी के पास अपनी खेती की जमीन हो । गुर्जर, मुसलमानों को अपनी जमीन नहीं देते – उन्हें डर लगता है कि मुसलमान उनकी जमीन हथिया लेंगे । किसी ने इस जमीन के बारे में लिख दिया था कि इस जमीन पर मुसलमान खेती करते हैं । कुछ गुर्जरों को नोटिस भी मिली थी कहीं से शायद ! इस तरह के लिखत–पढ़त के चलते गांव के गुर्जरों और मुसलमानों के बीच वैर–भाव सा हो गया है । जमीन कहां जाएगी भला ! जिसकी है उसके पास ही तो रहेगी !"

एक खेत में सोहनी करते दिखे बेचू बिंद और इनकी पत्नी मालती देवी । दोनों हमउम्र हैं । बेचू बिंद के अनुसार,"मेरी उम्र 65 वर्ष के आसपास है ।" मालती देवी का कहना है, "इसी के लगभग मेरी भी उम्र है ।"

"इन क्यारियों में से आप क्या–क्या निकाल रहे हैं ?" हमने पूछा तो मालती देवी ने बताया, "इन क्यारियों में हमने मेथी का साग लगाया है । यह साग ठीक से उपज नहीं सकेगा, यदि इसमें से खर–पतवार को निकाल बाहर न किया जाए । मोथा, दूब और सांठी हैं मुख्य तौर से मेथी को दबाने वाले । साग के बीच में मोथा बहुतेरे हैं, मेड़ पर दूब है और जहां–तहां सांठी है । कुछ और घासें कहीं–कहीं मिल जाएंगी, लेकिन उनकी मात्रा ज्यादा नहीं है ।"

शकुंतला नजफगढ़ के इलाके में खेत–मजदूर के तौर पर काम करती है । इनके अनुसार, "दैनिक मजदूरी 250 रुपये है आजकल । मैंने 25 रुपये दिहाड़ी पर पहली बार काम करना शुरु किया था । यही दिहाड़ी साल–दो साल पर 10–20 रुपये बढ़ते–बढ़ते आज 250 रुपये तक पहुंच गई है ।"

Please do not share this copy without the permission of authors.

शकुंतला यह भी बताती है, "मेरे पति के काम से इतनी आमदनी नहीं थी कि घर के सारे खर्च का वहन हो सके । मेरे तीन बच्चे हैं – दो लड़के, एक लड़की । मेरे पति इन्हें 10वीं तक ही पढ़ाने के पक्ष में थे । मैंने तीनों को आइटीआइ की पढ़ाई के लिए प्रेरित किया और इसके लिए जरूरी पैसों की व्यवस्था की । यदि मैं मजदूरी नहीं करती तो इन बच्चों को पढ़ा नहीं पाती । मैं नहीं चाहती थी कि मेरे बच्चे मेरी तरह कष्ट झेलें । इसलिए इन्हें शिक्षित करना जरूरी था और मैंने यह काम कर दिखाया । मुझे गर्व है कि मेरे बच्चे अपने पैरों पर खड़ा होने के काबिल हो गए हैं ।"

अध्याय–7

पशुपालन का बदलता ढर्रा

सहस्राब्दियों तक किसान और पशु–पालन का घनिष्ठ रिश्ता रहा है । भारत में यह परिदृश्य बदला है आजादी के कुछ दशक बाद । किसान के घर में गोवंश की बड़ी कद्र थी । कद्र इसलिए थी कि गोवंश को पालने से किसानों को कई तरह के फायदे थे । बैल हल खींचता था । गाय दूध देती थी जिससे किसान को दही, छाछ, घी, धाप, पनीर, छेना आदि चीजें सुगमता से अपने घर में ही प्राप्त हो जाती थीं । गाय बछड़ा दे या बछिया – किसान को फायदा ही फायदा था । बछड़ा बैल बनकर तैयार होता था । इसलिए किसान को बाजार से बैल खरीदने की जरूरत नहीं होती थी । बैल हल खींचने के अलावा मोट, रहट, हेंगा, गाड़ी भी खींचता था । बछिया बड़ी होकर गाय में बदल जाती थी । घर में ज्यादा मवेशी होने पर किसान उन्हें बेचकर घर–गृहस्थी चलाने के लिए आमदनी प्राप्त करता था । भैंस ज्यादा दूध देती थी, इसलिए उसे भी पालने की परंपरा थी । उसको बेचने से घर की आय में इजाफा होता था । जिनके पास अपनी खेती नहीं थी, वे अकसर बकरी पालते थे । बकरी पालने का फायदा यह है कि यह एक साथ कई बच्चे देती है और साल में दो बार बच्चे देती है । इसे बेचकर आय में इजाफा किया जाता है ।

खेती में मशीनीकरण के बढ़ते ही गोवंश पर खतरा मंडराने लगा । किसानों के घर में बैल गायब हो गए । ट्रैक्टर, पंपिंग सेट, हार्वेस्टर, इत्यादि वह सारा काम करने लगे जो बैल किया करते थे । बैलों को खिलाने–पिलाने की झंझट कौन पाले ! दूध के लिए भैंसें रखी जाती थीं । पहले किसान वह सब चीज उपजाने की कोशिश करता था, जो उसके निजी उपयोग के लिए जरूरी था । अब किसान भी बाजार को ध्यान में रखकर फसलें उगाने लगा । इससे वह कुछ ही चीजों का उत्पादन करता है । इस जिंस को बेचकर वह अपनी जरूरत की बाकी चीजें खरीदता है । वह अब दूध भी बाजार से लेना पसंद करता है। धीरे–धीरे पशु–पालन और खेती एक–दूसरे से अलग होते जा रहे हैं । कुछ लोग दूध–उत्पादन के लिए केवल दुधारू पशु पालते हैं ।

कृषि और पशुपालन अब दो अलग–अलग व्यवसाय हैं – इस बात को रेखांकित करती हैं दिल्ली के अलग–अलग क्षेत्रों में स्थित डेरियां । नजफगढ़ क्षेत्र में दो प्रमुख डेरियां हैं – नंगली डेरी और गोयला डेरी । नंगली डेरी शिवाजी मार्ग अर्थात नजफगढ़–उत्तम नगर रोड पर स्थित है – नजफगढ़ की ओर से चलने पर सड़क की बाईं ओर । यह एक बड़ी डेरी है । नजफगढ़ नाला उर्फ साहिबी नदी इसके करीब है ।यहीं पर है हरीश सहगल की दुग्धशाला । 66 वर्षीय सहगल को पशुपालन का एक लंबा अनुभव है ।

हरीश सहगल बताते हैं,"हिन्दुस्तान के विभाजन के बाद हमारा परिवार उस तरफ से (यानी पाकिस्तान से) दिल्ली चला आया – 1948 में । खैर, मेरा तो जन्म दिल्ली का ही है । यहां आने पर मेरे पिता ने मेहनत–मजदूरी करके पूंजी इकट्ठी की और इससे पशुपालन का रोजगार शुरू किया 1955 में । शुरू में एक–दो पशुओं से शुरुआत की और उसमें हर साल कुछ न कुछ इजाफा करते रहे । उन दिनों हम पटेल नगर में रहते थे । 1975 में नंगली डेरी में आए हम । घर से पशुपालन–स्थल दूर होने से हमारे खर्चे बढ़ गए

Please do not share this copy without the permission of authors.

। पशुपालन के बारे में अधिकारियों को न तो कोई ज्ञान था और न ही अनुभव । इसलिए उन्होंने डेरी की जगह तो तय कर दी, लेकिन डेरी को मिलने वाली सुविधाओं के बारे में कुछ भी सोचा–विचारा नहीं । जाहिर है, जब सुविधाओं के बारे में उनकी सोच ही नदारद रही तो वे उन्हें उपलब्ध कहां से कराते !" इसलिए मेरी समझ के अनुसार, गोबर और अन्य कचरे को इस जगह कैसे बेहतर तरीके से उपयोगी बनाया जा सकता है – सरकार को इस पर गंभीरता से विचार करना चाहिए ।"

पुष्पा देवी प्रेमनगर में रहती हैं । इनके पास दो मकान हैं – एक मकान 40 वर्ग गज के प्लॉट पर है और दूसरा मकान 25 वर्ग गज के प्लॉट पर । इनके दोनों मकानों के पास वाले प्लॉट खाली हैं । इन खाली प्लॉटों से पुष्पा देवी को अपने पशु–पालन में मदद मिली है । पुष्पा देवी ने लगभग 10 साल तक गाय पाली है । गाय के बारे में पुष्पा देवी कहती हैं,"मैंने एक बछिया को तीन साल तक पाल–पोसकर बड़ा किया । बड़ी होने पर वह गाभिन हुई और एक बछिया को जन्म दिया । अब एक से दो हुईं । यह बछिया भी बड़ी होकर गाय बन गई । इस तरह गायें बढ़ने का सिलसिला शुरू हुआ । लेकिन हमारी गायों को किसी की नजर लग गई । पहले एक गाय को किसी ने जहर दे दिया । वह मर गई । मैंने सोचा कि गाय चरने गई थी, उसने कोई ऐसी चीज खा ली है जिससे उसकी तबीयत बिगड़ गई । दूसरी गाय गाभिन थी । नौ महीने का बच्चा था उसके पेट में । वह सड़क किनारे खंभे से बंधी थी । एक आदमी ने दुश्मनीवश उसे भी जहर दे दिया । यह गाय भी मर गई । जहर देने वाले के खिलाफ मैं केस लड़ रही हूं । दो गायें जहर से मर गईं तो गाय पालने की इच्छा ही खत्म हो गई है ।"

बुराड़ी में रहती है समीना खातून । इन्होंने दो बकरे पाले रखे हैं । इनका कहना है, "बकरीद के आसपास हमने इन बकरों को खरीदा है । एक जोड़ी बकरे 8 हजार रुपये में मिले हैं । ये कुर्बानी के बकरे हैं । इनकी कुर्बानी अगले साल दी जाएगी। हम इन्हें बड़े जतन से पाल रहे हैं।"

गौतमपुरी में संजय । ये दलित परिवार से हैं । सुअर पालने में कई तरह की मुश्किलें हैं । इन मुश्किलों के बारे में चर्चा करते हुए संजय का कहना है,"सुअरों के बारे में समाज का नजरिया ठीक नहीं है । लोग सुअरों और इसके पालकों दोनों को हेय दृष्टि से देखते हैं । मेरे पास फिलहाल 1–2 ही सुअर हैं । मैं इन्हें हटाने के बारे में सोच रहा हूं । पहले मेरे सुअर मेरे घर के पिछवाड़े बने बाड़े में रहते थे । अब वह जगह खत्म हो गई है, क्योंकि सबने अपने पिछली गली की जगह तक अपने कमरे का विस्तार कर लिया है । सुअर रहें तो कहां ! मेरे आसपास कुछ मुस्लिम भाई भी रहते हैं । उन्हें तो सुअर और भी पसंद नहीं । मेरे पास कोई और जगह नहीं, जहां सुअरों को रख सकूं । मेरे सुअर सड़क पर ही रहते हैं ।"

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–8

चरवाहे और घसियारे

खेती–किसानी में जानवरों का विशेष योगदान रहा है । इन जानवरों को बथान पर खिलाने के साथ–साथ उन्हें मैदान में चराने की भी परंपरा रही है । खेती के तथाकथित आधुनिक तरीके को अपनाए जाने के बावजूद दिल्ली के बहुत से पशुपालक अपने पशुओं को मैदानों में घास चराते हैं । जब खेत खाली होते हैं, तब उनमें घासें उग आती हैं । ये घासें जानवरों के लिए चारा के काम आती हैं । चरवाहे इन घासों को चराते हैं अपने पशुओं से । घास खाली खेत में हो या फसल के साथ हो –कुछ लोग इस घास को गढ़कर और बेचकर अपने लिए आजीविका प्राप्त करते हैं ।

हमने यमुना खादर में किसिम–किसिम के चरवाहे देखे हैं । जगतपुर गांव के सामने के खेतों में गायों–भैंसों का हुजूम चरता है और चरवाहे किसी मंदिर के पास बैठे गप्प लड़ाते हुए उनपर निगाह रखते हैं । भैंसें तो भैंसें हैं – उन्हें पानी से बहुत लगाव है । वे दौड़कर यमुना में चली जाती हैं और नदी को पार करके जंगलों में छिप जाती हैं । चरवाहे पीछे से नाव पर नदी पार करते हैं। नाव न होने पर दूसरी भैंसों की पूंछ पकड़कर नदी उस पार जाते हैं। सुबह के गए चरवाहे शाम को चार बजे जगतपुर की ओर लौटते हैं । जंगल में सभापुर गांव के चरवाहे भी उनसे मिलते हैं अपनी गायों–भैंसों के साथ । चरवाहों के पास मोबाइल फोन हो, यह जरूरी नहीं। वे ऊंची आवाज में पुकार कर अन्य चरवाहों या अपने पशुओं से संपर्क करते हैं । एक दिन हम भी जंगल में थे । कुछ चरवाहों से मुलाकात हुई । सभापुर गांव के रतन लाल ने बताया,"यह जमीन जगतपुर गांव की है । लेकिन सभापुर के चरवाहे भी अपने ढोर इसमें चराते हैं । जगतपुर के किसी किसान या जमींदार को इस पर एतराज नहीं होता । इन सभी खेतों में तोरी, घिया, करेला इत्यादि लगाए गए थे । आप जहां–तहां टूटी–फूटी झोपड़ियां देख रहे हैं। ये झोपड़ियां उन किसानों की हैं जिन्होंने इन खेतों में फसलें लगाई थीं । बरसात में वे लोग अपना साजोसामान समेटकर अपने–अपने ठिकानों पर चले गए हैं । बरसात के बाद वे फिर लौटेंगे और इसमें कुछ न कुछ फसल लगाएंगे । जब फसल लगी होती हैं, हम अपने पशुओं को इस ओर नहीं लाते ।" यह जंगल कोई पेड़–रूंख वाला जंगल नहीं है । इस जंगल में तो बस घास ही घास है । दूब है जो पशुओं के चरने के काम आती है । पटेरा, भांग, नरकट, मूंज के पौधे इतने बड़े हो जाते हैं कि पशु और मनुष्य इसमें ढंक जाते हैं । पता ही नहीं चलता कि कौन कहां है । पता करने के लिए अपनी आवाज सबसे बड़ा सहारा है – पशुओं के लिए भी, मनुष्यों के लिए भी । इस जंगल में जगह–जगह चापाकल हैं मनुष्यों द्वारा अपने पीने के पानी की जरूरत के वास्ते लगाए गए ।

जिन चरवाहों का घर चारागाह के पास होता है, वे बार–बार अपने घर लौटते हैं दूसरे साथी चरवाहे पर पशु की देखभाल की जिम्मेवारी सौंपकर । वे बीच में एक बार अपने पशु के साथ भी घर आते हैं । लेकिन दूर–दराज के चरवाहे सुबह निकलते हैं तो शाम में ही वापस होते हैं । उनके दोपहर का भोजन कोई अन्य

Please do not share this copy without the permission of authors.

साथी लाता है। बहलोलपुर (सरायकाले खां) के चरवाहों का निवास स्थान और गोचर भूमि एक–दूसरे से दूर नहीं हैं । लेकिन जगतपुर का जंगल सभापुर और जगतपुर से दूर है । राजेंद्र कुमार से हमारी मुलाकात वजीराबाद बैराज के ऊपरी हिस्से में यमुना के किनारे हुई, पुस्ता नंबर–एक के इलाके में। यहां दिल्ली सरकार के वन विभाग ने पेड़–पौधे लगाए हैं । पेड़–पौधों से भरा यह घना इलाका है । इनकी बारह भैंसें और एक गाय पानी में खड़ी थीं । राजेंद्र कुमार ने बताया , "मेरे पशु चारागाह में चरने नहीं जाते । मैं इन्हें खूंटे पर ही भरपूर चारा खिलाता हूं । ये पानी में रहेंगे या इस बगीचे में । जब से यहां पेड़ घने हो गए हैं, यहां की घास मर गई है ।" इन्होंने पानी में तैरकर उसपार यानी बजीराबाद गांव की ओर जाती कुछ भैंसों को दिखाते हुए कहा, "वे भैंसें दिन में उस जंगल में चरेंगी और शाम को लौट आएंगी। तब उनके मालिक उन्हें घर ले जाएंगे ।"

अध्याय–9

मछलियां और मछुआरे

सदा–सर्वदा से मछली एक उत्तम और पौष्टिक खाद्य पदार्थ रही है । नदी–तालाबों में मछली पकड़ना एक शौक भी रहा है और पेशा भी । दिल्ली में अब मछली पकड़ने की गुंजाइश कम होती जा रही है । मछुआरों के लिए यमुना ही एकमात्र स्रोत रह गई है मछली पकड़ने का । चाहे पेशेवर हों या शौकिया – हर मछली पकड़ने वाले के कुछ विशिष्ट अनुभव और विचार होते हैं ।

दिल्ली के लगभग सभी जलस्रोत सूख गए हैं । यमुना में वजीराबाद बैराज के ऊपर ही सालोभर पानी रहता है । बरसात के समय पूरी यमुना में जल–जीवों के अनुकूल वातावरण रहता है, नहीं तो वजीराबाद बैराज के नीचे में प्रदूषित पानी होने से मछलियों के रहने लायक स्थिति नहीं होती ।

जगतपुर गांव के निकट डाइवर्सिटी पार्क के सामने पूरन मिला । उसके साथ उसका एक साथी भी था । दोनों देशी बंसी से मछली फंसाने में लगे थे । पूरन सुरेंद्र कॉलोनी के पार्ट III में गली नंबर 8 में रहता है । पूरन और उसका साथी अजीत दोनों ढोल बजाने का काम करते हैं । झड़ौदा गांव के लोग इन्हें शादी–ब्याह और अन्य उत्सवों पर ढोल बजाने के लिए बुलाते हैं । जिस दिन काम नहीं रहता, दोनों यदा–कदा मछली मारने के लिए यमुना किनारे आ जाते हैं ।

रामसिंह भी यहीं मिला मछली फंसाते हुए । यह उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर का रहने वाला है । इसका पुश्तैनी पेशा बुनकर का रहा है । फिलहाल यह कई वर्षों से दिल्ली में रहते हुए राजमिस्त्री का काम करता है । इसका कहना था, "आज मेरे लिए काम नहीं था तो यमुना किनारे आ गया बंसी लेकर । मैं इधर आता ही रहता हूं बीच–बीच में । मछली मारना मेरा धंधा नहीं, शौक है । मछलियां मिलें या न मिलें – इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । मछलियां मिल जाएं तो ठीक, वरना खाली हाथ वापस जाने का भी कोई मलाल नहीं – यमुना किनारे बैठना, उसे निहारना और मछलियों की चाल पर निगाह रखना आदि अपने–आप में एक सुखदायक एहसास है।"

हमें सोनिया विहार वाटर ट्रीटमेंट प्लांट के पीछे तीन आदमी मिले । ये लोग एक बड़ी मच्छड़दानी का उपयोग जाल की तरह कर रहे थे । तीनों मूल निवासी हैं बिहार के और दिल्ली में रहते हैं सोनिया विहार में । एक युवा था, एक अधेड़ और एक पचपन वर्ष के आसपास का । इन्होंने लगभग 5 किलोग्राम पोठिया मछलियां पकड़ी थीं । अधेड़ ने कहा,"अब हम अपने आवास की ओर लौटेंगे । जैसी भी मछलियां मिली हैं, इन्हीं से संतोष है।" यह कहकर उन्होंने अपना जाल समेटा और घर की ओर प्रस्थान किया ।

Please do not share this copy without the permission of authors.

अगर आप रविवार के दिन यमुना के किनारे हों और नदी में एक मच्छड़दानी से मछली पकड़ने वालों का समूह आपको दिखे, तो हो सकता है कि वह समूह अनिल मिंज का हो । इस समूह में 6–7 आदिवासी युवा होते हैं, जो मछली पकड़ने के लिए शौकिया तौर पर यमुना के पानी में उतरते हैं । ये सभी लोग बुराड़ी के संतनगर में रहते हैं और अलग–अलग धंधों में लगे हुए हैं । यह कोई स्थाई समूह नहीं है । बहुत सारे आदिवासी बुराड़ी के इलाके में रहते हैं और इनके बीच आपसी संपर्क है । ये रविवार या किसी छुट्टी के दिन पहले फोन से एक–दूसरे से संपर्क करते हैं और पता करते हैं कि वह व्यक्ति उस दिन फुरसत में है या नहीं । जो लोग फुरसत में होते हैं, वे इकट्ठा होकर यमुना के तीर पर पहुंचते हैं और मछली मारने की योजना में भागीदारी निभाते हैं । ये आदिवासी मूलतः झारखंड और छत्तीसगढ़ के रहने वाले हैं ।

रोबिन हलदर मछुआरा हैं । इनका कहना है, "यमुना में उलट–फेर का प्रभाव इसमें पाई जाने वाली मछलियों पर भी पड़ता है । उनके प्राकृतिक आवास बदल जाते हैं। इसलिए मछली मारने वाले मछुआरों को भी अपने तौर–तरीकों में बदलाव लाना पड़ता है । हमें नए सिरे से उन जगहों की पहचान करनी पड़ती है, जहां मछलियां मिल सकती हैं ।" हमने मछुआरों की एक संस्था रजिस्टर्ड कराने की सोची और इस दिशा में कुछ कोशिशें भी की हैं, लेकिन हमें अभी तक कोई सफलता मिलती नहीं दिख रही है । अफसरों का रवैया अजीब है । वे कहते हैं कि तुम सब बंगाल के निवासी हो । वहां से मछुआरा होने का प्रमाण–पत्र लेकर आओ, तभी तुम्हारी संस्था रजिस्टर्ड हो सकेगी । हम दिल्ली में 40 साल से मछली मारने का काम कर रहे हैं और हमारे पास जाल से मछली मारने का लाइसेंस भी है, इसके बावजूद हमें बंगाल से प्रमाण–पत्र लाने को कहा जा रहा है ।" रोबिन हलदर ने अपने समूह के कई लोगों का 'लाइसेंस' दिखाया । उन्होंने वह लिस्ट भी दिखाई जिसमें उनकी सोसाइटी में शामिल होने वाले 174 लोगों के नाम दर्ज हैं ।

रोहिणी में जयपुर गोल्डेन अस्पताल के पास एक पार्क है । इस पार्क में एक झील है । पार्क की निगरानी रखने वाला एक कर्मचारी बताता है, "हम किसी को भी इस झील में रहने वाली मछलियों का शिकार नहीं करने देते । बहुत–से लोग अपने घर से लाकर भी इसमें मछलियां डालते हैं । कई वर्षों से इस झील में मछली मारने का ठेका किसी को नहीं दिया गया है । पहले से बच गईं मछलियां ही इसमें रहते–रहते बड़ी हो गई हैं ।"

एक स्थानीय निवासी का कहना है, "इस झील में रोहू, कतला, पोठी, गरई, मांगुर इत्यादि कई तरह की मछलियां हैं । जब बारिश के पानी से झील लबालब भर जाती है तो आसपास के लोग यहां आकर मच्छड़दानी से मछली का शिकार करते हैं । हालांकि इस झील में मछली मारने की मनाही है, बावजूद इसके लोग चोरी–चोरी यह काम करते ही हैं । यहां पहरेदार हर समय तो रहते नहीं हैं । मैंने भी कुछेक साल पहले यह काम किया है ।"

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–10

बाजार और किसान

किसानों को अपने सामान खरीदने और अपने उत्पाद को बेचने के लिए बाजार से वास्ता रखना ही पड़ता है । उसे बीज, खाद, कीटनाशक दवा, कृषि–संबंधी औजार आदि खरीदने के लिए बाजार में आना होता है तथा अपने उत्पाद – अनाज, फल, सब्जी, आदि – बेचने के लिए भी । दिल्ली में जगह–जगह अलग–अलग तरह की मंडियां हैं । दिल्ली सरकार ने कई–कई अनाज मंडियां और फल–सब्जी मंडियां स्थापित कराई हैं । इसके अलावा आढ़तियों और दुकानदारों ने भी खास–खास इलाकों में अपनी दुकानें खोलकर बाजार को एक स्वरूप दिया है । किसानों और उनके उत्पादों के खरीदारों से भी बाजार का एक अन्य रूप उभरा है । साप्ताहिक हाट और दैनिक बाजार फुटपाथ और गलियों तक में कायम हैं । बाजार आज किसानों के खेत तक पहुंच गया है ।

अनाज की मंडी में किसान हर–हमेशा नहीं रहता । जब–जब उसके खेत में अनाज उपजता है तब–तब वह अनाज मंडी में अपना सामान लेकर पहुंचता है । किसान के पास अपने अनाज को सुरक्षित रखने की व्यवस्था का अभाव है, इसलिए खरीफ और रबी की फसल तैयार होते ही अनाज मंडी में किसानों की भीड़ लग जाती है । वे अपने सामान की उचित कीमत पाने में हमेशा असमर्थ होते हैं । चूंकि एक खास समय में बाजार में अनाज की बहुतायत होती है, इसलिए व्यापारी उसे कम से कम कीमत में खरीदते हैं । सरकार न्यूनतम मूल्य तो घोषित करती है, लेकिन किसानों को हमेशा न्यूनतम मूल्य से कम पर अपना उत्पाद बेचना पड़ता है । व्यापारियों के पास बड़े–बड़े गोदाम होते हैं अनाज को सुरक्षित रखने के लिए । वे किसानों से अनाज खरीद करके उसमें जमा कर लेते हैं और उसे ऊंची कीमत पर बेचते हैं । दिल्ली के एक किसान की टिप्पणी है,"अनाज किसान का होता है और बोली लगाता है दलाल । दलाल और व्यापारी के बीच एक सांठगांठ होती है । बाजार में व्यापारी का पलड़ा भारी रहता है हमेशा । व्यापारी सरसों से तेल निकालकर और दलहनों से दाल तैयार कर मनमाना बेचते हैं बाजार में । वे धान से चावल बनाकर भी कमाई करते हैं । किसान के उत्पादों की कीमत का निर्धारण किसान के हाथ में नहीं है, वह तो व्यापारी के हाथ में है।"

साग–सब्जी व फल मंडियों में भी यही दशा है । फल मंडियों में बड़े व्यापारी और आढ़ती मजे में रहते हैं और किसान उनके रहमोकरम पर । जब किसान का माल नहीं बिकता तो वह मंडी में सड़ता रहता है । साग–सब्जी की हालत तो और भी पतली है । यह जल्द खराब होने वाला सौदा है । किसान इसे औने–पौने दामों पर

Please do not share this copy without the permission of authors.

बेचने को मजबूर होते हैं । बाजार में कमीशन एजेंटों की चांदी रहती है । उनका कुछ भी दांव पर नहीं होता । वे गला फाड़कर आवाज लगाते हैं और उसकी भरपूर कीमत वसूलते हैं ।

हमने आजादपुर की चौधरी हीरा सिंह थोक फल एवं सब्जी मंडी तथा केशोपुर की थोक फल एवं सब्जी मंडी देखी है । इनमें भारत में उपजने वाला हर फल मिलता है विशेषकर आजादपुर की मंडी में । केला, जामुन, आम, सेब, अंजीर, अन्नानास, अंगूर, नासपाती, नींबू, किन्नू, लीची, अबूबोसा, चीकू, आलू बुखारा, संतरा, ... क्या–क्या नहीं मिलता इस मंडी में ! लेकिन इनमें से शायद ही कोई उत्पाद हो जो दिल्ली के किसान उपजाते हैं । दिल्ली का एक किसान कहता है,"दिल्ली के गांव गरीब थे, लेकिन दिल्ली के सेठों के कई बाग–बगीचे थे । उनमें फलदार वृक्षों की भी भरमार थी।" सामाजिक कार्यकर्ता रीता नाहटा का कहना है,"दिल्ली की मिट्टी अनुर्बर नहीं है । इसमें कई तरह के फलदार वृक्ष लगाए जा सकते हैं और फल प्राप्त हो सकते हैं । कई फार्म हाउसों तथा बंगलों में मैंने आम, जामुन, केला, चीकू, अनार, संतरा, बेर आदि के पेड़–पौधे देखे हैं और उनका फल भी खाया है । यह दूसरी बात है कि दिल्ली के किसानों ने बागवानी पर पूरा ध्यान नहीं दिया है । जब वे इन फलों का उत्पादन करते ही नहीं तो बाजार में फल–उत्पादक के तौर पर उनकी उपस्थिति दिखेगी कहां से !"

सब्जी के बाजारों में दिल्ली के किसानों द्वारा उपजाई गई सब्जियां दिखती हैं – थोक सब्जी मंडियों और खुदरा सब्जी मंडियों में भी । हालांकि हरियाणा, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश से भी सब्जियां आती हैं दिल्ली में । दिल्ली के किसानों द्वारा उपजाई गई सब्जियां उत्तर प्रदेश और हरियाणा के शहरों में भी बिकती हैं – फरीदाबाद, नोएडा, बहादुरगढ़ आदि में । यही हाल अनाज का है । दिल्ली की अनाज मंडियां देश भर के किसानों के उत्पाद दिल्ली के बाजारों में बेचती हैं और दिल्ली के किसानों द्वारा उपजाया गया अनाज दूसरे राज्यों के बाजारों में बिकता है । दिल्ली के किसान इन दिनों मुख्य तौर पर गेहूं, धान, सरसों, बाजरा ही उपजाते हैं । पहले जौ, चना, ज्वार आदि की भी बड़े पैमाने पर खेती होती थी यहां ।

सब्जी बाजार मुहल्ले–मुहल्ले, गली–गली में हैं । साप्ताहिक हाट हर कॉलोनी में लगते हैं, इनमें सब्जी वाले भी आते हैं । ये विक्रेता साइकिल रिक्शा ट्रॉली में अपना सामान लाते हैं और इन्हें जमीन पर रखकर या ट्रॉली में ही रखे–रखे अपना सामान ग्राहक को बेचते हैं । ये सब्जी–विक्रेता गलियों में फेरी लगाकर भी अपना सामान बेचते हैं । दिल्ली के किसान आलू और प्याज (गांठ) नहीं उपजाते हैं । यहां सिर्फ जाड़े के मौसम में टमाटर की उपज होती है । बाकी महीनों में टमाटर शिमला से आता है । हां, सागा–प्याज सालोभर उपजाते हैं दिल्ली के किसान । ये किसान इस प्याज में गांठ आने के बाद हरे रूप में ही इन्हें बाजार में बेच देते हैं, इनके पत्ते सूखने नहीं देते । दिल्ली के किसान मक्का की भी खेती करते हैं, लेकिन इन्हें पकने नहीं देते, ये इन्हें कच्चा ही बेच देते हैं ।

कुछ सब्जी–विक्रेता किसानों के खेत में पहुंचकर उनसे सब्जी खरीदते हैं। कुछ किसान खुद मुहल्ले में घूम–घूमकर सब्जियां बेचते हैं । घोड़ागाड़ी पर प्याज, गुड़, गन्ना लेकर गली–गली में बेचने वाले लोग भी दिखते हैं । कुछ लोग इस तरह का कारोबार ट्रैक्टर ट्रॉली में सामान रखकर करते हैं । फेरी लगाने वाले अपनी सुविधा के अनुसार वाहन का इस्तेमाल करते हैं ।

Please do not share this copy without the permission of authors.

अध्याय–11

संघर्ष : मुश्किल में किसान

भारतीय किसान यूनियन (अ) के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं चौधरी ऋषिपाल अंबावत । इस संगठन के कंझावला स्थित दफ्तर में हमारी मुलाकात हुई बलजीत सिंह और करण सिंह से । ये दोनों यूनियन के सदस्य हैं । इनसे हमने पूछा,"दिल्ली के किसानों की क्या–क्या समस्याएं हैं ?" इनका जवाब था,"दिल्ली का किसान समस्याओं से बुरी तरह घिरा है। सबसे बड़ी समस्या तो यही है कि दिल्ली को गैर–कृषि क्षेत्र घोषित कर दिया गया है । हम किसान की श्रेणी में आते ही नहीं । इसलिए देश–भर के किसानों को मिलने वाली सब्सिडी हमें नहीं मिलती । हम किसान–सम्मान योजना के तहत मिलने वाली सहायता–राशि से भी महरूम हैं । राजनीतिक पार्टियां – चाहे किसी भी दल की सत्ता रही हो दिल्ली में – हमारी समस्याओं पर ध्यान नहीं देतीं । बड़ी विचित्र स्थिति है – दिल्ली की भूमि का मामला केंद्र सरकार की देखरेख में है । राज्य सरकार ने एक बार आपदा राहत के तौर पर 14000 रुपये प्रति एकड़ की सहायता प्रदान करने की घोषणा की तो केंद्र की भाजपा सरकार ने इस पर सख्त एतराज जताया था कि राज्य सरकार का यह कदम गैर–कानूनी है, संविधान विरोधी है ।"

"किसान मंझधार में हैं । गांव शहरीकरण में है, लेकिन शहरीकरण के फायदे नहीं मिल रहे हैं हमें । न तो सीवर की व्यवस्था है, न ही पानी की निकासी की । हम जमीन बेचना चाहें तो बिकती नहीं, क्योंकि इसका कोई खरीदार नहीं है ।" यह कहना है बलजीत सिंह का । करण सिंह इसमें अपनी बात जोड़ते हैं,"सरकार अपनी मर्जी से जमीन खरीदती है, वह भी अपने द्वारा तय दर पर । किसान का अपनी जमीन पर कोई अधिकार नहीं है कि वह अपनी मर्जी से अपनी जमीन बेचे और उसकी अधिकतम कीमत प्राप्त करे ।" करण सिंह इस बात का उल्लेख करना नहीं भूलते,"शीला दीक्षित की सरकार ने 2008 में इस क्षेत्र की भूमि का सर्किल रेट 53 लाख रुपये प्रति एकड़ तय किया था; इसके बाद इस सर्किल रेट में किसी तरह की वृद्धि नहीं की गई है, जब कि 2019 आ चुका है । अगर जमीन बाढ़ में डूब जाती है या सूखा पड़ जाता है और किसान अपनी भूमि पर खेती नहीं करता है तो धारा–81 के तहत सरकार उस जमीन को अपने कब्जे में ले लेती है । इसी तरह, यदि किसी किसान के पास मान लीजिए कि आठ एकड़ जमीन है और वह अपनी जमीन में से एक–दो एकड़ बेचना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता । अगर वह अपनी जमीन का एक हिस्सा बेच देता है तो धारा–33 के तहत

Please do not share this copy without the permission of authors.

शेष जमीन सरकार के कब्जे में चली जाएगी ।" करण सिंह की मांग है कि "किसान विरोधी इन दोनों धाराओं को हटाना चाहिए । किसान की मर्जी के खिलाफ उसकी भूमि का अधिग्रहण नहीं होना चाहिए । अगर किसान की जमीन का अधिग्रहण होता है तो उसे जमीन के बदले जमीन दी जानी चाहिए और उसके परिवार के सदस्यों को जीवन–निर्वाह की जिम्मेवारी सरकार की होनी चाहिए । किसान को जमीन का बाजार–भाव मिलना चाहिए । समय–समय पर सर्किल रेट में बाजार–सापेक्ष बदलाव होना चाहिए ।"

भूपेंद्र सिंह रावत किसान नेता हैं । "कंझावला लगभग 1700 वर्ष पुराना गांव है । इस गांव के किसानों ने 'भूमि बचाओ आंदोलन' में शिरकत करके किसानों की समस्याओं की ओर ध्यान खींचा । इसमें स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भागीदारी निभाई । अब तक यह धारणा थी कि 'जान भगवान की, जमीन सरकार की।' कंझावला के किसानों ने इस धारणा को उलट दिया और एक नया नारा दिया – 'जान इंसान की, जमीन किसान की ।' फिलहाल किसानों का पलड़ा भारी है । वे कोर्ट में बाजी मारते नजर आ रहे हैं ।" – भूपेंद्र सिंह रावत कहते हैं। वे यह भी कहते हैं,"2013 का भूमि अधिग्रहण कानून कुछ प्रगतिशील है, लेकिन इसमें भी किसानों के संपूर्ण हितों की रक्षा करने का प्रावधान नहीं है । दिल्ली सरकार जो लैंड पुलिंग पॉलिसी लाई है, उससे किसानों की जमीन पूंजीपतियों के हाथों में चले जाने का खतरा और बढ़ गया है ।"

अध्याय–12

कचरा खाद है और ऊर्जा का स्रोत भी

इन दिनों दिल्ली में कचरे के तीन पहाड़ हैं । पहला पहाड़ भलस्वा में है । यह उत्तरी दिल्ली नगर निगम क्षेत्र में है । दूसरा पहाड़ ओखला में है। यह दक्षिणी दिल्ली नगर निगम क्षेत्र में है । तीसरा पहाड़ गाजीपुर में है । यह पूर्वी दिल्ली नगर निगम क्षेत्र में है । इन पहाड़ों की ऊंचाई दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही है । नगर निकायों को दिल्ली में नई जगह नहीं मिल पा रही है जहां वे कचरे का निस्तारण करें, इसलिए चौथे पहाड़ की बुनियाद रखने में बाधा खड़ी है । नई दिल्ली नगरपालिका परिषद और दिल्ली छावनी परिषद क्षेत्रों में कोई ऐसा पहाड़ नहीं है । ये दोनों विशिष्ट क्षेत्र हैं । ये अपना कचरा अपने पास नहीं रखते, दूसरे क्षेत्रों के मत्थे मढ़ देते हैं । अगर हम वैज्ञानिक दृष्टि अपनाएं तो ये कचरे के पहाड़ खड़े ही न हों । इन कचरों का उपयोग करके हम खाद और बिजली प्राप्त कर सकते हैं । इससे हम अपने खेतों को उपजाऊ बना सकते हैं, जरूरी ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं ।

कचरा माने क्या ?

दिल्ली में साग–सब्जी, फल–फूल, की कई मंडियां हैं । इनके परिसर से रोज हजारों टन कचरा निकलता है । इस कचरे में सब्जियों की पत्तियां, डंठल, छिलके, सड़ी–गली सब्जियां, रस निकालने के बाद फलों के गूदे, फलों के छिलके, जानवरों के गोबर, उनके भूसे के अवशिष्ट, सड़क के बुहारने से प्राप्त धूल–गर्द, आदि होते हैं । दूसरा कचरा तरल रूप में रहता है । इसमें पशुओं और मनुष्यों के मल–मूत्र शामिल हो नालियों और नालों से होकर बहते हैं । तीसरे तरह का कचरा किसानों के खेतों में फसल काटने के बाद उसकी मिट्टी से लगा होता है जिसे पराली के नाम से जाना जाता है । आजकल पंजाब और हरियाणा में ही पराली नहीं जलाई जाती, दिल्ली के भी खेतों में पराली जलाने का रिवाज–सा हो गया है । यह रिवाज देश–व्यापी स्वरूप ग्रहण कर चुका है – यानी अन्य राज्यों में भी ऐसा ही होता है । हमारे देश के किसान पहले अपने कचरे का इस्तेमाल खाद बनाने के लिए करते थे । हरित–क्रांति ने उन्हें रासायनिक खादों का गुलाम बनाया तो यह कचरा उनके लिए खाद न रहा, बल्कि एक फालतू चीज हो गई । इसे ठिकाने लगाने की समस्या आ खड़ी हुई । और कोई उपाय न सूझा तो वे इसे खेत में ही जलाने लगे । इसे जलाने के कारण न केवल पराली जली, खेत के खरपतवार जले या किसानों की नजर में खेत में मौजूद फालतू चीज जली, बल्कि इससे खेत

Please do not share this copy without the permission of authors.

की मिट्टी भी जली, उस मिट्टी में मौजूद खेती को लाभ पहुंचाने वाले जीवाणु भी जले, खेत की उर्वराशक्ति बढ़ाने वाली विविध सामग्रियां तो जलीं ही ।

कचरा तो खेती का मित्र है

अगर सही तरीके से उपयोग किया जाए तो कचरा भी मूल्यवान बन जाता है । कचरे को उपयोगी संसाधन में बदलने के लिए शैलजा आर. राव. का सुझाव है, "खेती में बचे अवशेष जिन्हें ज्यादातर खेत से बाहर सड़क पर निकालकर रख दिया जाता है या जला दिया जाता है, उन्हें पोषक तत्वों से भरपूर कंपोस्ट में बदल दिया जाए । कंपोस्ट से भूमि को सूक्ष्म तथा पोषक तत्व प्राप्त होते हैं जो पौधों को बढ़ाते हैं, जमीन की उर्वराशक्ति में वृद्धि करते हैं, भूमि की संरचना सुधारते हैं तथा जमीन में रहने वाले केंचुए आदि जीवों को भोजन प्रदान करते हैं । इसी प्रकार यह खेती पर खर्चों को कम करते हैं, क्योंकि ये महंगे रासायनिक खादों पर किसान की निर्भरता खत्म करते हैं ।" (*पारंपरिक तरीकों व अपने बीजों से रसायनमुक्त खेती,* पृष्ठ–92)

जापान और चीन में मल और मूत्र को बहुमूल्य सामग्री समझा जाता है । इनके कुशल और प्रभावी प्रयोग से न केवल ईंधन की आवश्यकता पूरी होती है, बल्कि इनसे पौधों को पोषक–तत्व भी उपलब्ध होते हैं । इसके कारण कृषि–उत्पादन में महत्त्वपूर्ण सुधार आया है । साथ–साथ प्रदूषण की समस्या भी हल हुई है । वर्ष 1976 में चीन रिसोर्सिज लिमिटेड ने हांगकांग के अर्बन सर्विस डिपार्टमेंट (शहरी सेवा विभाग) से 2,50,000 डॉलर रकम खर्च कर मल आयात किया था । जापान और चीन की भूमि के अधिक उर्वर होने का मुख्य कारण है मानव मल का खेतों में लगातार उपयोग ।" (*बायोगैस,* पृष्ठ– 3) इसी पुस्तक के पृष्ठ–2 पर यह अंकित है, "प्रतिदिन एक व्यक्ति अपनी सभी गतिविधियों द्वारा 45.4 किलोग्राम कूड़ा–करकट पैदा करता है उसमें से 34 किलोग्राम कार्बनिक पदार्थ होता है । इस कार्बनिक पदार्थ में 2.3 किलोग्राम मल और जूठन, 0.09 किलोग्राम स्लरी और शेष भाग में मुख्यतः पशुओं का कूड़ा–कचरा और पौधों के अवशेष होते हैं । अनुमान है कि प्रति किलोग्राम कार्बनिक अवशेष व कचरे से 1 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है जिससे किसी देश में काम में आने वाली कुल ऊर्जा का लगभग आधा भाग प्राप्त किया जा सकेगा ।"

Please do not share this copy without the permission of authors.